Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

भारत में शहरीकरण

डॉ० बिन्दु

सहायक-शिक्षिका,

उत्क्रमित मध्य विद्यालय,

मटौढ़ा, मसौढ़ी, पटना, बिहार, भारत।

सारांश- भारत गाँवों का देश रहा है। इसका अभिप्राय यह बिल्कुल नहीं है कि भारत में शहरों का अस्तित्व प्रश्नों के घेरे में है। हमारे अतीत के विहंगावलोकन में हम देखते है कि ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में हड़प्पा व मोहनजोदड़ो, रोपड़, लोथल, कालीबंगा आदि में प्रारम्भिक दो शहरी सभ्यताएँ है। इनके नगर विन्यास तत्कालीन सभ्यताओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। हमारे ऐतिहासिक साक्ष्य इसी बात को अनेक कोणों से प्रभावित व स्थापित करती है।

प्रमुख शब्द :- राष्ट्रीयता, प्रौद्योगिक विकास, भारतीयता, खेत-खलिहान, प्राकृतिक दृश्य, अपनापन, मेल-मिलाप, सहनशीलता, सामाजिक सदाचार, धार्मिक सम्भावना।

शहर जिस प्रकार कलकत्ता का नाम लेने से रसगुल्ले की मिठास मुँह में घुल जाती है, बनारस की पहचान बनारसी साड़ी और पान से होती है, असम चाय के लिए मशहूर है वैसे ही भारत का हर राष्ट्र अपनी राष्ट्रीयता लिए हुए हैं लेकिन जब हम भारत का नाम लेते हैं तो लहलहाते खेत आँखों के सामने लहराने लगते हैं। "कृषि प्रधान देश होने के नाते एक ओर हम अन्य देशों से उन्नत हैं तो दूसरी ओर आर्थिक और तकनीकि रूप से पिछड़े हुए भी हैं। जहाँ केवल खेत ही पूरे जीवन का आधार हो वहाँ हम शारीरिक रूप से सम्पन्न तो हो सकते है लेकिन नये-नये प्रोद्यौगिक विकास के बिना देश का पिछड़ापन दूर करना सम्भव नहीं। आज हमारा भारत गाँव और शहर के मिश्रित आदान-प्रदान से एक समृद्ध और सम्पन्न देश के रूप में पूरे विश्व में किसी पहचान का मोहताज नहीं। लेकिन हमारी भारतीयता को दिन-ब-दिन पाश्चात्य की काली परछाई अपने अंदर समाहित करती जा रही है।[1]'' गाँव और शहर दोनों की महत्ता अपनी-अपनी जगह विशिष्ट है। किसी से किसी की तुलना नहीं की जा सकती। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं लेकिन जो हमारे देश का आधार है निश्चित है उसका स्थान दूसरे से किंचित् अधिक ही होगा।

यह निर्विवाद सत्य है कि जब सृष्टि का श्रीगणेश हुआ होगा तो सर्व प्रथम गाँव का ही निर्माण हुआ होगा। वन-जंगलों से मनुष्य ने सीधे अट्टालिकाओं में नहीं बल्कि कुटिए में रहना प्रारम्भ किया। पेड़ों के पत्तों को छोड़ जिन्स, मखमल, ब्राण्डेड कपड़े नहीं बल्कि

मरकीन पहना शुरू किया। गाँव में खेत-खलियान, केमिकल मुक्त सब्जी, स्वच्छ हवा, प्राकृतिक दृश्य, खेल-कूद-कसरत के साधन है। एक-दूसरे के साथ अपनापन, मेल-मिलाप, सहनशीलता, संवेदनशीलता, सद्भाव, सदाचार, अहिंसा, परोपकारिता सब कुछ गाँव की ही देन है। गाँव ने ही पारिवारिक सद्भाव, संस्कृति, संस्कार, सामाजिक सदाचार और धार्मिक सम्भावना को बनाए रखा है। यही हमारी भारतीयता को बनाए रखी है परन्तु आज हमारी भारतीयता संकट में है; क्योंकि गाँव अब शहर में गुम होता जा रहा है। गाँव से शहर की ओर लोगों के पलायन को देख यह कहना असत्य नहीं होगा कि गाँव का अस्तित्व अपने बचाव के लिए गाँव-वासियों से जैसे गुहार लगा रही है, उसे देखने-सुनने का समय और हृदय अब स्वयं गाँव वालों के पास ही नहीं। गाँव में आज भी पढ़ाई-लिखाई के आधुनिक माध्यम नहीं, औद्योगिक साधन नहीं, विकास के मार्ग नहीं। पगडंडियाँ सड़क बनने की प्रतीक्षा में स्वयं लुप्त होती जा रही है। ऐसी स्थिति में अपने पद-मर्यादा को बचाए रखने के लिए गाँव स्वयं को दिन-ब-दिन क्षीण महसूस कर रही है। वर्तमान समय में हम भारत में दो तरह के गाँव देख पाते हैं -

एक वह जो अपने पहचान को बनाए रखने में तिल-तिल पलायनवाद के कारण घुट-घुट कर मर रही है। शिक्षा, बेरोजगारी, विकास, प्रगति, उन्नति के खोज में माध्यमिक की पढ़ाई कर कुछ लड़के शहर की ओर भागते हैं तो लड़कियों की शादी करा दी जाती है। जो शहर गया वह कभी अपने घरवालों के लिए पैसे भेज देता है तो कोई दो-तीन सालों में एक बार अपने घर को झांक जाता है, तो कोई-कोई शहर वाला ही बनकर रह जाता है। गाँव की गलियां, गाँव वालों के उन्नति, गाँव का विकास और उसके प्रगति का चिन्तन-मनन शहर के चकाचौंध में धुंधला हो जाता है। और गाँव की गलियां चिराग के रोशनी में घुल-घुल कर दिन काटती है। आज भी बहुत से गाँव ऐसे हैं जहाँ के लोगों ने कभी बिजली के खम्बे भी नहीं देखे हैं और धर्माचार्य ए. सी. में बैठकर लोक-परलोक का ज्ञान देते हैं उनके चर्चा में कभी ऐसे पिछड़े गाँव का नाम भी नहीं आता। तथाकथित नेताओं के व्याख्यान में कभी ऐसे गाँव का जिक्र नहीं आता जो ग्रामीण योजना के प्राथमिक सुख-सुविधा से भी वंचित हैं। **''स्वाधीनता के सत्तर साल बाद भी कौन सी नीति और विकास का मार्ग तैयार किया जा रहा है जो आज भी हमारे देश का गाँव नग्न अवस्था में अपने मुक्ति के लिए छटपटा रही है। यही हमारे स्वतंत्र भारत की गंतात्रिक राजनीति है जहाँ धनी और अधिक उपर उठता जा रहा है और गरीब और अधिक नीचे धंसता जा रहा है।[2]''**

देश की ऐसी विषम स्थिति को देख कर ही राजकमल चौधरी ने कहा है - **''तो दूसरा वह है जो स्वयं गाँव है या शहर समझ ही नहीं पा रहा। बीच में घड़ी के पेन्डुलम की तरह डोलता हुआ अपने पहचान के तलाश में एक द्वंद्वात्मक स्थिति में है। यह न गाँव के नींव को बरकरार रख पा रहा है और न ही शहर की चमचमाहट से सम्पूर्ण हो पा रहा है। कुछ तथाकथित शहर से अपने साथ शहरीपन लिये आये हुए शहरी गाँव को शहर बनाने की होड़ में लगे हैं। विकास और सांस्कृतिक धरोहर के पार्थक्य से अनजान ऐसे लोग विकास के नाम पर गाँव के सादगी और भारतीय संस्कृति का गला हर रोज घोटते हैं।[3]''**

बिजली, शिक्षा, सड़क, गाँव के हित में उसका विकास करना अच्छी बात है, स्वच्छता का पालन करना, अंधविश्वास-आडम्बर, रूढ़ि से मुक्त होना भी प्रगति का पथ है परन्तु पिता के साथ बेटे कर शराब पीना, पढ़े-लिखे बच्चों का अपने अनपढ़ माँ-बाप से अपना संबंध बताने में हिचकिचाना, आधुनिकता का चोला ओढ़े सिन्दुर के चुनरी को उतार फेकना, अपने पड़ोस के किसी परिचित को किसी

मुसीबत में देख झंझट में फंसने के डर से पीठ दिखाकर भाग जाना, केवल अपने बारे में सोचना, अपने स्वार्थ में केवल अपने फायदे के लिए संबंध बनाना, अपनों से अलगाव कर उनके खर्च उठाने से बचना, समानता के नाम पर अपने शरीर का खुला प्रदर्शन करना, माँ के हाथ की रोटी का अपमान कर जमाने के साथ चलने का दम भरना, **'आपलोग पुराने समय में अभी भी जी रहे हो'** कह कर अपने से बड़ों को नमस्कार ना कर अपने माता-पिता के संस्कारों का अपमान करना, मातृभाषा को बोलने में अपना अपमान समझ विदेशी भाषा को अपना धरोहर मानना, 'पैसे तो मैं वहाँ भेज दिया करूंगा' कह कर और कभी बिना कहे अपने बुढ़े माता-पिता को वृद्धाश्रम में छोड़ देना यह किसी गाँव की मिट्टी से उत्पन्न संस्कार नहीं। शहरी शहर के रंग में ढल जाते हैं, गाँव वालों को अपने गाँव की नियती पता है; परन्तु गाँव और शहर के रास्ते को छोड़ यह बीच का रास्ता और अधिक घातक बनता जा रहा है।

"जहाँ तक बात विकास और प्रगति की है उसे अपनाना चाहिए लेकिन अपने अस्तित्व को त्याग कर दूसरे के रंग में रंग कर अपनी पहचान को ही खो देना किसी भी इंसान, वस्तु, समाज, गाँव , राष्ट्र के लिए घातक है।[4]" गाँव के गोधूलि को देख शाम होने का पता चल जाता है, कोयल और पपीहे की बोली सावन और वसंत का आभास कराती है। सुनहरी धरती सम्पन्नता के गीत गाती है, नीला अम्बर सुहावना घटा लिए सूने मन को भी उल्लास से भर देती है, नदी की कल-कल ध्वनि किसी विरहिणी के विरह का साथी बन जाती है, नीम के तरू तले प्रखर भादों में भी शीतलता का अनुभव होता है परन्तु लोग शहर के प्रदूषण, अकेलेपन, चकाचौंध करने वाली उजाले के मायाजाल में ऐसे फंसे हुए हैं कि उनका बस चले तो गाँव शब्द ही यह अपने शब्दकोश से निकाल दे।

" गाँव के लोगों में व्यवहार नहीं, अनपढ़-गवार-निरक्षर है गाँव वाले, उन्हें बात करने की तमीज नहीं, आधुनिकता का मतलब उन्हें पता नहीं, अंधविश्वासी होते हैं गाँव के लोग, पिछड़ी हुई होती है उनकी सोच, समय के साथ चलना उन्हें आता नहीं, नई-नई चीजों को अपनाने से कतराते हैं आदि..." कुछ ऐसी ही सोच रखी जाती है गाँव वालों के प्रति। परन्तु क्या आपने कभी विचार किया है शहर अगर खुद को शहर कह के गर्व महसूस कर रहा है तो उसके इस गर्व को किसने बनाए रखा है? अगर आज वह आधुनिक बनने का दम भर रहा है तो उसके आधुनिकता का श्रेय किसे जाता है? अंधविश्वास का जन्मदाता गाँव हो सकता है लेकिन उसके बाहुपास में आज अगर सबसे अधिक कोई फंसा है तो वह है शहर।

किसी भी गाँव में आपको ऐसे मंदिर और तीर्थ स्थान नहीं मिलेंगे जिसके भगवान के नाम बैंक में खाते खोले गये हो। अगर कोई गाँव वाला एक दिन शहर को साफ करना छोड़ दे तो शहर के लिए एक दिन भी जीना मुमकिन नहीं। शहर में रिक्शा चलाने वाला, जूता पॉलिश करने वाला, सब्जी बेचने वाला, रास्तों में झाड़ू मारने वाला, पेपर देने वाला, ऑफिस में चाय देने वाला, पार्टी खत्म होने पर शराब और जूठे प्लेटों को साफ करने वाला, कपड़े धोने वाला प्राय: गाँव का ही होता है; लेकिन कभी भी कोई उन्हें सम्मान की दृष्टि से भी नहीं देखता। क्योंकि ऐसे लोग वर्ण और वर्ग दोनों ही दृष्टि से शहर वालों से छोटे होते है, यही आज के तथाकथित आधुनिक लोगों की मानसिकता है। बेनीपुरी के शब्दों में कहे तो गाँव शहर के लिए 'नींव की ईंट' है परन्तु जिस तरह हमारे स्वतंत्रता की लड़ाई में कुर्बान उन अनगिनत शहीदों के नाम हमें नहीं पता। सबका ध्यान चमचमाती कंगूरे पर पड़ती है और धरती के साथ हाथ नीचे धंसे

ईंट का कोई मोल नहीं रहता। उसी प्रकार गाँव के नींव पर खड़ी शहर को ही लोग सरहाते हैं परन्तु उसके अस्तित्व को बनाने में तिल-तिल खुद को मोम की तरह घुलते हुए गाँव का कोई मोल नहीं।

शहर का प्रगतिवादी खुंखार पंजा अब गाँव को अपने उन्नति का खुराक बनाने के लिए सूक्ष्म रफ्तार से आगे बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में गाँव को अपने पद मर्यादा और अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए स्वयं ही संघर्ष करना पड़ेगा। चंद कागज के टुकड़ों के लिए अपने कर्तव्य को भूल कर अपने जन्मभूमि को दिन-ब-दिन क्षीण और नग्न करके जो अपराध किया जा रहा है वह अक्षम्य है। माना कि रास्ता कठिन और दुर्गम है लेकिन कसौटी अगर दुसाध्य है तो परिणाम भी अद्‌भुत होगा। बढ़ो, करो, खुद बदलो और कुछ बदल कर दिखाओ। बनना है तो 'खुद का' बनो दूसरों की तरह बनने वाला स्वयं कुछ नहीं बन पाता।

भारत का अतीत अपने आप में शहरीकरण का एक नवाब नमुना है। मोहनजोदारो से लेकर हड़प्पा सभ्यता में हमें विकसित नगरीय संस्कृति की झलक मिलती है। हमारे जीवन जीने के तरीके तथा व्यवहार के विभिन्न आयाम इसे सिद्ध करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथः-

1. ए पापुलेशन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ- 171, लेखक- टिम डायसन (2018)

2. ए पापुलेशन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ- 107, लेखक- टिम डायसन (2018)

4. एन इनवारमेंट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ- 101, लेखक- एच फिसर माइकल